पुस्तक परिचय

प्रभु की पगडंडियां

ओशो एक दुर्लभ उपस्थिति हैं। उनकी उपस्थिति ऐसी है जैसे फूलों की दुर्गम-घाटी के भीतर से बहकर जाता हुआ कोई झरना फूलों से लदकर मानों स्वयं फूलों की प्रवाहमान नदी ही बनकर बहे, जैसे चंपा के विस्तृत बगीचे से बहकर जाता हुआ मंद समीरण अपनी सुवास-राशि से हमारे मन-प्राण को उन्मुक्त कर दे, जैसे किसी वन-प्रांतर में बहती चौड़े पाट वाली नदी पर पूनों की चांदनी बरसे और बरसती ही चली जाए।

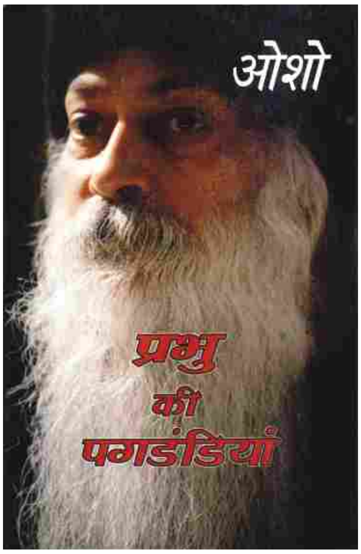

उनका होना एक नृत्य है, एक हास्य है, एक लय, एक संगीत है, एक अविराम अटूट उत्सव है, एक निरंतर महारास है और है जीवन-प्रवाह का अनवरत संकीर्तन। लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। हमें नृत्य से, उल्लास से, उत्सव से, यहां तक कि जीवन से भी भय लगता है।

वास्तव में हम जीवन से डरे हुए लोगों की पूरी एक जमात हैं, एक कौम हैं। हमें मुर्दों से बड़ी प्रीति है। उनके साथ हमें बड़ी सुविधा अनुभव होती है। हम मुर्दों के विषय में कोई धारणा निर्मित करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं। उनके पक्ष-विपक्ष में भाषण देने की हमें पूरी छूट है। हमारे भाषणों और हमारी धारणाओं का प्रतिकार करने वे मंच पर नहीं जा पहुंचते। हम उन्हें जब चाहें मकान बना सकते हैं।

ओशो हमारी आंखें खोलने के दु:साध्य कार्य में संलग्न रहे हैं, निजता तक पहुंचने के मार्ग को वे हमें बता रहे हैं। समझा रहे हैं कि अपनी आंखों के बंद संपुट खोलो। कैसे अचरज की बात है कि जब वे हमें आवाज लगाते हैं तब बंद आंखों वाली पूरी जमात विरोध के सम्मिलित स्वर का उदघोष करती है।

तो आइए हिम्मत करें, हम अपने आपको तैयार करें, इस साधना-पथ पर पहला कदम उठाएं और अपनी निजता को खोजें। अपने-आपसे सीधा साक्षात्कार करें। गिर जाने दें मुखौटे, डिग्रियां, पदवियां, यश, सम्मान और प्रतिष्ठा। छोड़ें अपनी सारी रायबहादुरी, क्योंकि ये मुखौटे ही हमारे अहंकार के निर्माता-निर्देशक हैं। हमारे भीतर की सारी जगह इन्होंने घेर ली है। हम इनसे ठुंसे हुए भरे बैठे हैं। उतारें ये जूते, जो अपने सिर पर पहन रखे हैं हमने। अपने भीतर पैदा करें थोड़ा आकाश, थोड़ा अवकाश और भगवत्ता की इस चांदनी को भीतर आने देने का कोई मार्ग सुलभ करने का प्रयास करें। अपनी एक लंबी कविता के छोटे अंश से संभवतः मैं यह बात ठीक ढंग से कह सकूं—

अब हर रात
दूधिया चांदनी में नहाया हुआ
अपने गांव के टीले का वह सीढ़ीदार मंदिर
मुझे आवाज लगाता है,
जहां पहली ही सीढ़ी पर
नाम, धाम, पद और काम जूतों की तरह उतर आता है
जो भी वहां ऊपर जाता है सिर्फ अकेला ही जाता है
अपने-आपको बिना जूतों के पाता है
अगर तुम मेरे दोस्त हो तो
तुम्हें आवाज लगाता हूं कि आओ,
जीवन के ढलते प्रहर में मुझे
जूतों की रखवाली के इस काम से बचाओ,
आओ! तुम्हें निमंत्रण है, आओ!

ओशो हर दिन आवाजें लगा रहे हैं—रोज-रोज साधना-पथ का यात्री होने का निमंत्रण भेज रहे हैं। तो जिन्हें यह पुकार सुनाई देती हो और जो लोग उत्सुक हों सत्य की साधना में, प्रकाश की ओर गमन करने में, निजता के ज्ञान में उत्कंठा हो जिनकी वे कृपया अपने जूतों को भूलें, बहुत हुआ! अब छोड़ें उनकी रखवाली का काम, निर्भार हों इस निरर्थक उत्तरदायित्व से और प्रवेश की तैयारी करें भगवत्ता के अलौकिक मंदिर में। शताब्दियों से बंद रहकर जकड़ गए कब्जों वाले वातायनों को सप्रयास खोलें और बरसने दें पूनों की चांदनी के दिव्य आलोक को अपने भीतर।

मैं भी इस साधना-पथ में आपका सहभागी हूं, आपका हमराही हूं।

प्रणाम सहित।

— डा. नरेंद्र तिवारी
(सुप्रसिद्ध व्यंग्य कवि)
116, आवास विकास कालोनी,
प्रदर्शनी मार्ग, अलीगढ़ (उ.प्र.)